International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(1): 234-237

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(1): 234-237
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-11-2019
Accepted: 17-12-2019

डॉ. आनन्द कुमार
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
देशबंधु महाविद्यालय, दिल्ली
विश्वविद्यालय, कालकाजी, नई दिल्ली,
भारत

Corresponding Author:
डॉ. आनन्द कुमार
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
देशबंधु महाविद्यालय, दिल्ली
विश्वविद्यालय, कालकाजी, नई दिल्ली,
भारत

याज्ञवल्क्यस्मृति में वर्णित सप्तांग

डॉ. आनन्द कुमार

सारांश
याज्ञवल्क्यस्मृति में एक सुदृढ़ राज्य की परिभाषा प्राप्त होती है। यहां राज्य को एक सजीव रचना के रूप में स्वीकार किया गया है जो राज्य को सजीव एकात्मक शासन-व्यवस्था के रूप में मान्यता प्रदान करता है। याज्ञवल्क्य इसे सात प्रकृति अर्थात् सप्तांग के रूप में निरूपित करते हैं। राजा के कार्यों और उसके द्वारा स्थापित शासन-व्यवस्था के आधार पर सप्तांगों का विवेचन इस शोध-पत्र में किया गया है। राज्य के सर्वांगीण विकास के लिए इन सातों अंगों का सुदृढ़ होना आवश्यक है। याज्ञवल्क्य ने राज्य-शासन में इनकी एक दूसरे के प्रति अंतरनिर्भरता पर बल दिया है।

कूटशब्द : याज्ञवल्क्यस्मृति, सप्तांग, स्वामी, अमात्य, जन, दुर्ग, कोश, दण्ड, मित्र।

प्रस्तावना:
प्राचीन भारतीय राजदर्शन में राज्य के सावयव रूप का उल्लेख मिलता है। वैदिक ऋषि राज्य को एक सजीव प्राणी मानते थे। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'ऋग्वेद' है, जहां संसार की कल्पना विराट पुरुष के रूप में की गई है और उसके अवयवों के द्वारा सृष्टि के विभिन्न रूपों का बोध कराया गया है। [1] मनु, कौटिल्य आदि मनीषियों ने राज्य की कल्पना एक सजीव शरीर के रूप में की है जिसके सात अंग होते हैं। याज्ञवल्क्य ने भी राज्य के आंगिक स्वरूप का समर्थन करते हुए राज्य को सप्त प्रकृतियुक्त माना है। स्मृतिग्रंथों में महर्षि याज्ञवल्क्य विरचित याज्ञवल्क्यस्मृति सर्वाधिक प्रचलित और महत्वपूर्ण है।

याज्ञवल्क्य के समय में राजतंत्र ही प्रमुख शासन-व्यवस्था थी। यद्यपि वे अनेक स्वायत्त ग्रामसंस्थाओं, जो उसके अंतर्गत छोटे-छोटे राज्य के रूप में कार्य करती थीं, फिर भी उनका अस्तित्व सुरक्षित था। राज्य का कोई भी कार्य एकाकी रूप से नहीं हो सकता इसलिए उसके सात अंगों (सप्तांग) का विवेचन याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार किया है - स्वामी, अमात्य, जन, दुर्ग, कोश, दण्ड एवं मित्र। इसे प्रकृति भी कहा गया है। [2] इनमें प्रथम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है तथा उसी क्रम में उत्तरोत्तर अन्य सबका स्थान है।

1. स्वामी अर्थात् राजा इन सप्तांगों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि सर्वोच्च सत्ता इसी में निहित होती है। राजतंत्रात्मक शासन में राजा ही समस्त प्रशासनिक गतिविधियों का संचालक होता है। इस कारण उसमें अनेक गुणों का सन्निधान होना चाहिए जो याज्ञवल्क्य के अनुसार इस प्रकार हैं- राजा को महान उत्साही, कृतज्ञ, वृद्धसेवी, विनीत, सत्त्वसम्पन्न, कुलीन, सत्यवादी, पवित्र, आलस्यरहित, स्मृतिमान, विशालहृदय, धार्मिक, अव्यसनी, बुद्धिमान, शूर, रहस्य जानने वाला और उसे गुप्त

रखने वाला तथा आन्वीक्षिकी, दण्डनीति एवं वार्ता-इन तीनों विद्याओं में प्रवीण होना चाहिए। [3] उसे ब्राह्मणों के प्रति क्षमाशील, अनुराग रखनेवालों के प्रति सरल, शत्रु के प्रति क्रोध करने वाला तथा सेवकों एवं प्रजा के प्रति पिता-सम होना चाहिए। [4] उसे सुयोग्य एवं आचारशील मंत्रियों और पुरोहितों का चुनाव करना चाहिए। [5] उसे पुरुषार्थी होना चाहिए। पुरुषार्थ के अभाव में दैव से सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। [6] राजपद के अनुरूप आदर्शों का दर्शन याज्ञवल्क्य हमें कराते हैं। राजा की दिनचर्या इस प्रकार वर्णित है- प्रातःकाल उठकर रक्षा की व्यवस्था करे, स्वयं आय-व्यय का निरीक्षण एवं व्यवहारों को देखे। इसके पश्चात् स्नान करे। भोजनोपरान्त स्वर्ण लाने वालों के द्वारा लाए स्वर्ण को देखकर भंडार में रखवा दे। चरों से मिलने के बाद मंत्रियों के पास बैठकर दूतों को कार्य सौंपे। फिर अकेले या मंत्रियों के साथ विहार करके मनोविनोद करे। इसके बाद बल(सेना) का निरीक्षण कर सेनापति के साथ विचार-विमर्श करे। संध्योपासनोपरांत गुप्तचरों की बातों को सुनकर भोजनादि। इसके पश्चात् शंखध्वनि के साथ सोए और उसी प्रकार शंखध्वनि के साथ उठे। इसके अतिरिक्त राजा शास्त्रचिंतन करे और अन्य दैनिक कार्यों के साथ ऋत्विज, पुरोहित एवं आचार्य से आशीर्वाद प्राप्त करे। [7] इस प्रकार राजा शासन-व्यवस्था का संचालन अत्यंत सजग होकर करता था जिससे प्रजा निर्भय तथा सुरक्षित रहकर समृद्ध व सुखी हो।

राजा के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व का उल्लेख करते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं कि राजा कुत्सित आचरण करने वाले, चोर, लुटेरे, प्रजाधन अपहृत करने वाले, दुस्साहसी तथा विशेष रूप से कायस्थ (लेखकगण) से पीड़ित प्रजा की रक्षा करे। दुराचारियों को अवश्यमेव दण्ड दे। व्यभिचारी और चोर को न पकड़ने वाले को दण्ड दे। राजा की आज्ञा न मानने वाले, तराजू से कम तौलनेवाले, खोटा सिक्का बनाने वाले को राजा कठोर दण्ड दे। इतना ही नहीं, यदि वह चोरों से मिला सामान उसके स्वामी को न देकर स्वयं रख ले या अपने कोष से न दे अथवा चोरों को पकड़ने का यथोचित प्रयास न करे तो उसे पाप लगेगा।[8] अप्राप्त लाभ के लिए प्रयास करे, प्रयास से प्राप्त वस्तु की रक्षा करे, रक्षित वस्तु की नीतिपूर्वक वृद्धि करे तथा विवर्द्धित को सत्पात्रों में बांट दे। जो अन्यायपूर्वक स्वकोष को बढ़ाता है वह राजा शीघ्र ही कुल सहित नष्ट हो जाता है। राजा प्रजा से कर उसकी रक्षा के लिए लेता है। यदि वह वैसा नहीं करता है तो उसे चोर के समान कहा गया है। राजा विजित क्षेत्रों में प्रचलित आचार, व्यवहार तथा कुल की मर्यादा का उसी रूप में परिपालन करे। [9] राजा की कर्तव्य विषयक मूल्य-चेतना का उद्घाटन करते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं कि राजा ने राज्य की रक्षा हेतु जो अधिकारी नियुक्त किए हैं उनके आचरण की परीक्षा गुप्तचरों द्वारा कराकर जो सदाचारी हों उन्हें सम्मानित करे तथा विपरीत कार्य करने वालों को दण्डित करे। उत्कोचजीवियों का धन छीनकर उन्हें अपने राज्य से निकल दे। श्रोत्रियों (शास्त्रज्ञ) को सम्मान, दान एवं सत्कार देकर अपने राज्य में बसा दे। 10 राज्य के सुप्रबंध का मूलाधार मंत्रणा है। अतः मंत्रियों आदि के साथ की गई मंत्रणा को फल प्राप्ति तक गुप्त रखा जाए। [11]

राष्ट्र की विभिन्न इकाइयों (राज्यों) के साथ राजा के संबंध एवं नीति पर प्रकाश डालते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं कि जिस प्रकार राजा स्वराष्ट्र का परिपालन करता है उसी प्रकार परराष्ट्र को वश में कर उसका पालन-पोषण करना भी उसका धर्म है। [12] अनेक राज्यों के एक मण्डल की कल्पना की गई है। इनके साथ तीन प्रकार के संबंध तथा चार प्रकार के नीतिनिर्धारण विषयक उपायों का उपयोग किया जाना चाहिए। राज्य सीमा से लगे हुए राज्यों के साथ अरि (शत्रु) का, उसके बाद के राज्यों के साथ मित्र का तथा उसके भी बाद के राज्यों के साथ उदासीन जैसा संबंध रखना चाहिए। इनके साथ साम, दान,भेद तथा दण्ड की नीति (उपाय) का प्रयोग करना चाहिए।

इनका उचित रूप से परिस्थितियों के अनुरूप ही प्रयोग करने पर सफलता प्राप्त होती है। दण्ड-नीति अंतिम उपाय माना गया है। जब शत्रु का राज्य अन्नादि से परिपूर्ण हो, शत्रुसेना दुर्बल हो तथा अपनी सेना के अश्वादि प्रसन्न एवं उत्साहपूर्ण हों [13] तब दृष्टि में रखकर कार्य करना चाहिए। ये छः गुण हैं- संधि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय तथा द्वैधीभाव। [14]

स्वामी (राजा) के अतिरिक्त अन्य अंगों पर विचार किया जाए तो राज्य के लिए एक विशेष शासनक्रम (अर्थात् अमात्य और जन) होता है। शासनक्रम के कुशल संचालन के लिए एक सुव्यवस्थित अंग (अर्थात् दुर्ग और कोश) की आवश्यकता होती है तो शासन की रक्षा हेतु सेना-बल (अर्थात् दण्ड) और इसके अतिरिक्त अंतर्राज्यीय संबंध (मित्र) की भी महती आवश्यकता है।

2. **अमात्य:** राज्य के सात अंगों में दूसरा स्थान अमात्य का है जिसे सचिव या मंत्री भी कहा जाता है। अधिकांश स्मृतिकारों ने अमात्य, सचिव और मंत्री इन तीनों को प्रशासनिक क्षेत्र में प्रायः समान महत्त्व का बताया है। याज्ञवल्क्य ने राज्य के सुसंचालन के लिए अमात्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका को दृढ़ता से स्वीकार किया है लेकिन उन्होंने अमात्यों की संख्या का उल्लेख नहीं किया है। यह अमात्य राजा को उचित मंत्रणा देता है तथा राजा भी उससे सदैव परामर्श करता है। राजा को मंत्रियों से मंत्रणा ऐसे स्थान में करनी चाहिए जो एकांत में हो। अमात्य के चयन में राजा को विवेक से काम लेना चाहिए। याज्ञवल्क्य के

अनुसार राजा ऐसे व्यक्ति को अमात्य नियुक्त करे जो प्राज्ञ हो, उच्चकुलोद्भव हो, साथ ही स्थिरबुद्धि का और शुचितासंपन्न हो। इसके साथ ही दैवज्ञ, विद्वान, दण्डनीति में कुशल तथा गृहशांति के कार्य (अथर्वांगिरस) में निपुण व्यक्ति को पुरोहित बनाने का उल्लेख भी मिलता है। [15]

3. **जन:** राज्य के सात अंगों में तीसरा स्थान जन का है। इससे जन, जनपद या राष्ट्र का अर्थ लिया जाता है। जन अर्थात् राज्य। याज्ञवल्क्यस्मृति में स्वायत्त ग्राम संस्थाओं (छोटे राज्य) की ओर संकेत किया गया है। नीतियों के निर्धारण में कुल, जाति, श्रेणी, गण, जनपद के धर्मों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। [16] राजा के अधीन पूग, श्रेणी एवं कुल नामक संस्थाओं की न्यायिक शक्ति की चर्चा की गई है [17] जिससे यह स्पष्ट होता है कि सुव्यवस्था हेतु ये छोटे राज्य अपने-अपने विधान का भी निर्माण करते थे। राजा इनको मान्यता देता था किंतु इनके कार्यान्वयन का नियंत्रण अपने हाथ में रखता था। याज्ञवल्क्य ने यह भी कहा है कि राजा को रमणीक, पशुओं की वृद्धि में, जीवन निर्वाह में, कंदमूल-पुष्प और फल से परिपूर्ण एवं वनप्राय देश में निवास करना चाहिए और उसी स्थान पर परिजनों, कोश एवं अपनी सुरक्षा के लिए दुर्ग बनवाना चाहिए। [18]
4. **दुर्ग:** सप्तांग में इसे चौथा स्थान प्राप्त है। दुर्ग को किला या राजधानी भी कहते हैं। राजधानी ही शासन-यंत्र की धुरी है। सुरक्षा की दृष्टि से दुर्ग की विशेष महत्ता थी। याज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार दुर्ग की स्थिति से राजा की सुरक्षा, प्रजा एवं कोश की रक्षा होती है। याज्ञवल्क्य के कहने का भाव यह है कि राजा को अपनी, प्रजा की तथा कोश की सुरक्षा के लिए ऐसे दुर्ग में आवास योजना बनानी चाहिए जो रम्य हो, अर्थात् जहां जीवनोपयोगी वस्तुएं प्रचुरमात्रा में सुलभ हों तथा वन में हो, जहां पेड़-पौधे हों ही, साथ ही शत्रु के लिए दुर्गम भी हो। [19]
5. **कोश:** राज्य का पांचवा अंग कोश है। जिस राज्य में राजा का कोश रिक्त हो जाता है, तब वहां प्रजा का शोषण होने लगता है। कई शास्त्रों में तो कहा गया है कि इन सप्तांगों का मूल आधार कोश ही है-

   कोशश्च सततं रक्ष्यो यत्नमास्थाय राजभिः।
   कोशमूला हि राजानः कोशो वृद्धिकरो भवेत।। [20]

   याज्ञवल्क्य की दृष्टि में राज्य की सुरक्षा व समृद्धि के लिए कोश परमावश्यक है। राजा स्वयं राज्य की आर्थिक स्थिति की समीक्षा करता रहता था। बाहर से लाए गए स्वर्ण को देखकर भंडार में रखवाता था। इतना ही नहीं, अर्थ के महत्त्व तथा गंभीरता को देखते हुए वह निष्णात, कुशल एवं सच्चरित्र कोषाध्यक्ष की नियुक्ति करता था। [21] न्यायिक कौशल से कोशवृद्धि के लिए याज्ञवल्क्य राजा को प्रेरित करते हैं। [22] वैसा नहीं करने से वह विगतश्री हो जाता है तथा सबान्धव नष्ट हो जाता है। प्रजाजन का कोपभाजन होता है, यदि वह उनका शोषण करता है। [23]
6. **दण्ड:** इसे राज्य का छठा अंग कहा है। दण्ड को ही अन्य ग्रंथों में सेना या बल भी कहा गया है। याज्ञवल्क्य ने दण्ड के महत्त्व को अंगीकार किया है। दुराचारियों तथा अपराधियों को दण्ड देने का विधान इस स्मृति में किया गया है। [24] दण्ड के द्वारा सुव्यवस्था, सुशासन स्थापित किया जाना चाहिए। स्वराष्ट्र की सुरक्षा के लिए दण्ड (सेना-बल) आवश्यक है, साथ ही परराष्ट्र से युद्ध करने के लिए भी इसकी आवश्यकता पड़ती है। दोनों ही प्रकार के दण्ड का विधान याज्ञवल्क्यस्मृति में किया गया है।
7. **मित्र:** राज्य के सात अंगों में यह सातवां और अंतिम अंग है। राजा के लिए सच्चे मित्र का होना आवश्यक है क्योंकि राजा मित्रों की सहायता से अपने राजधर्म का निर्वाह करता है। याज्ञवल्क्य के मत में मित्र राजा का उत्कृष्ट बल होता है। उन्होंने मित्र बनाने की आवश्कता का विशेष रूप से वर्णन किया है। उनका यह सुचिन्तित विचार है कि स्वर्ण तथा भूमि के लाभ की अपेक्षा मित्र की प्राप्ति उत्कृष्ट है। अतः मित्र की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए तथा सावधान होकर सत्यता की रक्षा करनी चाहिए। [25] एक सुयोग्य मित्र के सहयोग से राजा को सब कुछ सुलभ हो सकता है तथा अंतर्राज्यीय संबंध भी अच्छे बन सकते हैं।

निष्कर्षत

कह सकते हैं कि राज्य के ये सातों अंग आपस में एक दूसरे से अभिन्न हैं। सुरक्षा के लिए राजा को दुर्ग, कोश एवं दण्ड के साथ-साथ मित्र की भी आवश्कता होती है। अन्य राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने को राजशास्त्र में परराष्ट्र नीति कहते हैं।

यह नीति प्रत्येक राज्य की अनिवार्य आवश्कता है। यह राज्य के अस्तित्व के लिए आवश्यक भी है और अनेक हितों की पूर्ति करता है। राज्य का आंतरिक दृष्टि के साथ-साथ बाह्य दृष्टि से भी शक्तिसंपन्न होना आवश्यक है। इसके लिए राज्य को अपने मित्र राज्य सहित अन्य राज्यों के साथ संबंध सुधारने का प्रयास करना चाहिए। राजा को अपनी कूटनीति से ऐसा प्रयास करना चाहिए कि शत्रु राज्य भी बिना युद्ध उसके प्रभुत्व को स्वीकार कर ले और मित्र राजा भी उसके साथ संबंध प्रगाढ़ बनाए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि याज्ञवल्क्य की सप्तांग की परिकल्पना अत्यन्त व्यावहारिक है तथा इससे राज्य, राजा और प्रजा तीनों का मंगल सिद्ध होता है।

पादटिप्पणियां

1. ऋग्वेदसंहिता, 10.90
2. याज्ञवल्क्यस्मृति-1/353
3. वही, 1/309-311
4. वही, 1/334
5. वही, 1/312
6. वही, 1/349-51
7. वही, 1/327-333
8. वही, 1/336, 354, 2/298, 240, 270-71
9. वही, 1/317, 340, 337, 343
10. वही, 1/338-339
11. वही, 1/344
12. वही, 1/342
13. वही, 1/345, 346, 348
14. वही, 1/347
15. वही, 1/312, 313
16. वही, 1/361
17. वही, 2/31
18. वही, 1/328
19. वही, 1/321
20. महाभारत, शांति पर्व, 119.16
21. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1/327, 328, 322
22. वही, 1/340
23. वही, 1/341
24. वही, 1/354
25. वही, 1/352

संदर्भ

1. मनुस्मृति, शास्त्री हरगोविंद, चौखंभा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1970
2. याज्ञवल्क्यस्मृति, शर्मा, नारायण, नागप्रकाशक, दिल्ली, 1985
3. याज्ञवल्क्यस्मृति, पाण्डेय, उमेश चन्द्र, चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1983
4. ऋग्वेद संहिता, खण्ड-IV, एच° एच° विल्सन, परिमल प्रकाशन, दिल्ली, 2001
5. महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1995
6. कामन्दकीय नीतिसार, डॉ० दिनेश कुमार गर्ग, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2016